''उत्तररामचरितम्'' की क्रियायोजनाओं का काव्यभाषिक सौन्दर्य

डॉ० शिव कुमार
तेपरी, मुजफ्फरपुर, बिहार
ई-मेल-drshivkumar74@gmail.com

''नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥''[1]

''उत्तररामचरितम्'' भवभूति की ऐसी सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसके कारण वे कालिदास के समकक्ष नाटककार माने जाते हैं। कवित्व की दृष्टि से भी यह महाकवि की अपूर्व रचना है। उन्होंने अपनी नाट्यकला को पराकोटि पर पहुँची चमत्कृत काव्यकला की पृष्ठभूमि पर खड़ा किया है।[2] इनकी कविता में भाषा तथा भाव में अनुपम सामञ्जस्य है, जैसा भाव, वैसी भाषा।

नाटक में श्रव्य-तत्त्व एवं दृश्य-तत्त्व दोनों ही अत्यन्त कुशलतापूर्वक सन्निविष्ट रहते हैं, इसके अन्तर्गत काव्यतत्त्व एवं भाषातत्त्व दोनों का समावेश होता है। इसमें भाषा के साथ भाषेतर माध्यम भी उतनी ही क्षमताओं के साथ संयुक्त रहते हैं। नाटककार भाषा की ग्राम्यता का परिष्कार कर, शास्त्रीयता की प्रतिपन्नता से बचकर, भावानुकूल शब्दार्थ की विनियोजना करता है। इसीलिए नाटक को ''काव्येषु रम्यम् ...'' से विभूषित किया गया है।

रूपक की काव्य-भाषा में क्रियापदों का, अन्य पदों की अपेक्षा अधिक महत्त्व है; क्योंकि विशेषणादि पद तो कवि की पर्यवेक्षण -शक्ति के परिचायक होते हैं; किन्तु अनुभव को उसने कितना भोगा है, इसका साक्ष्य उसके क्रियापद ही देते हैं। इस प्रकार नाट्य-भाषा की शक्ति का परिचय क्रियापदों द्वारा ही मिलता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन के अनुसार भी आख्यात या क्रियापदों के विशिष्ट रूप में संयोजन से प्रतीयमान अर्थ अत्यधिक अभिव्यञ्जित हो उठता है। उन्होंने एक उदाहरण से आख्यात पदों की व्यञ्जकता का विशिष्ट विश्लेषण किया है-

अपसर रोदितुमेव निर्मित मा पुराय हते अक्षिणी मे।
दर्शनमात्रोन्मत्ताभ्यां याभ्यां तव हृदयमेवं रूपं न ज्ञातम् ॥

यहाँ 'अपसर' यह आख्यात पद है। इससे व्यङ्ग्यार्थ ध्वनित होता है कि तुम्हारे द्वारा मुझे मनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, जब दैव ने ही ऐसा विधान कर दिया तो उसे कौन बदल सकता है? इस व्यञ्जना के द्वारा नायिका, नायक से अपने अन्तस् की व्यथा का निवेदन कर उसके हृदय में सद्भावना उत्पन्न कराना चाहती है। पुनः एक उदाहरण देकर उन्होंने अपने इस मन्तव्य को और अधिक स्पष्ट किया है कि तिङन्त-अर्थ लावण्य-विच्छित्ति का एक लक्षण साधन है।

मा पन्थानं रूधः अपेहि बालक अप्रौढ अहो असि अह्नीकः।
वयं परतन्त्रा यतः शून्यगृहं मामकं रक्षणीयं वर्त्तते।।

यहाँ 'अपेहि' यह तिङ्न्त पद है, इससे यह अर्थ अभिव्यञ्जित है कि- हे नायक! तुम अभी प्रौढ नहीं हो, जो लोक में इस प्रकार प्रच्छन्न प्रेम को

सबके सामने स्पष्ट कर रहे हो। मेरा घर सूना पड़ा है, जो कि सङ्केत स्थल है, वहीं आ जाना।

नाट्य भाषा एवं सामान्य भाषा में क्रियापदों की उपर्युक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' की भाषा-संरचना में प्रयुक्त क्रियापदों पर दृष्टिपात करने पर हम देखते हैं कि उन्होंने इन पदों के प्रयोग में अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। भाव की गम्भीरता के लिए तदनुकूल शब्दों को चुनकर भवभूति बड़े ही सुन्दर ढंग से उस भाव को विशद रूप से चित्रित करते हैं। भाषा के उपर उनका विलक्षण अधिकार है, शब्द-चयन और वाक्यविन्यास भी असाधारण है। उनके श्लोकों से संगीत की ध्वनि निकलती है और भावों को नेत्रों के सामने मूर्त रूप में उपस्थित कर देते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक में सीता के शोक में सन्तप्त राजर्षि जनक की व्यथा की अभिव्यञ्जना द्रष्टव्य है-

अनियतरूदितस्मितं
विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि,
स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते।।[5]

यहाँ 'रूदितं' 'स्मितं' तथा 'जल्पितं' कृदन्त-पदों के द्वारा सीता की बालदशा का स्वाभाविक चित्रण किया गया है तथा 'स्मरामि' इस तिङन्त-पद से जनक की असह्य पीड़ा तथा वसुन्धरा की कठोरता अभिव्यञ्जित है।

इसी तरह राम की दारूण-व्यथा की अभिव्यक्ति में महाकवि भवभूति के अख्यात-पदों की व्यञ्जकता निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है-

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।[6]

प्रस्तुत श्लोक में दलति, भिद्यते, वहति, मुञ्चति, ज्वलयति, करोति, प्रहरति तथा कृन्तति - तिङन्तपद हैं। इससे यह अर्थ अभिव्यञ्जित होता है कि राम के वर्तमान सीता-वियोग की अवधि और प्रतीकार दोनों नहीं है, वे अशरण हैं, निरूपाय हैं। राम के इस दारूण और असह्य मनोदशा की सुन्दर अभिव्यञ्जना अन्यथा दुर्लभ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. संस्कृत सुकवि समीक्षा, पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-333.
2. संस्कृत वाङ्मय का इतिहास, डॉ० सूर्यकान्त, पृष्ठ-233, 234.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-547.
4. काव्यभाषा, पृष्ठ-171.
5. उत्तररामचरितम्, चतुर्थ अङ्क, श्लोक संख्या-4.
6. वही, तृतीय अङ्क, श्लोक संख्या-31.